हंसवंशावतंस – श्रीमन्महामहिम - विद्यामार्तण्ड
निग्रहाचार्य - श्रीभागवतानंदगुरुकृता

शतक चन्द्रिका

संस्कृत पाठ एवं हिन्दी अनुवाद के साथ

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

सम्पादिका
उषाराणी सङ्का

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

NOTION PRESS
India. Singapore. Malaysia.

ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x
First Published – 2022

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

हंसवंशावतंस – श्रीमन्महामहिम - विद्यामार्तण्ड
निग्रहाचार्य - श्रीभागवतानंदगुरुकृता

शतक चन्द्रिका

संस्कृत पाठ एवं हिन्दी अनुवाद के साथ

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

सम्पादिका
उषाराणी सङ्का

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे।
निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्द्धताम् ॥



श्रीनिग्रहाचार्य (श्रीभागवतानंद गुरु)

सम्पादकीय

नमो नमः

इस कलिकाल में सुनने को बहुत मिलता है कि महात्मा कम हो गए हैं, साधक विरल हो गए हैं और अच्छे व्यक्ति लुप्त होते जा रहे हैं। सच्चे सनातन धर्म अनुयायी कोई बचे ही नहीं है जो आधुनिकता के चपेट में न आ गए हो, चाहे किसी भी सीमा तक हो। पर यह सारी बातें श्रीमन्निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरुजी के प्रसंग में आते ही बहुत गलत लगने लगती हैं।

मुझे उनके कृत्यों को पढ़ने का और समीक्षा करने का शुभ अवसर व सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पुराण, इतिहास, तन्त्रागम आदि अनेकानेक शास्त्रों का ज्ञान उनकी भाषा में स्थान स्थान पर झलकता ही रहता है। उनकी कृतियाँ आध्यात्मिकता, भक्ति, साहित्यिकता व उत्कृष्ट भाषापटिमा का अनोखा संगम हैं। श्रीभागवतानंद गुरुजी का यह भक्ति काव्य पारायण योग्य ग्रन्थ है जो भक्तों की सभी कामनाओं को पूर्ण कर सकता है क्योंकि यह न केवल आध्यात्मिक विज्ञान से पूर्ण हुआ है बल्कि वह उस साहित्यिक रसानन्द से कूट-कूट कर भरा हुआ है जिसकी प्रशंसा हमें साहित्य दर्पण आदि ग्रन्थों में विश्वनाथ आदि आलङ्कारिकोंके निर्वचनों में मिलती है। इनकी संस्कृत भाषा के बारे में विशेष

कहना चाहूंगी कि विरल धातुओं का प्रयोग करना, लुप्त होते हुए लकारों का जी भर के उपयोग में लाना, मुझे एक संस्कृतज्ञा होने के नाते बहुत आनन्दित करता है।

यह न केवल इनकी विद्वत्ता को दर्शाता है बल्कि संस्कृत प्रेमियों के लिए यह एक अनोखा उपहार सा प्रतीत होता है। इसे पढ़कर हम अनेक नये धातुओं नये शब्द रूपों एवं प्रयोगों से पल पल अपनी भाषाज्ञान को बढ़ाते होते हुए दैवी भावना में, आध्यात्मिक प्रपञ्च में विहरण करते हैं। लिट्लकार के सुन्दर प्रयोग, प्राचीन अर्थों में कुछ शब्दों का प्रयोग, जो कोशों में भी नहीं मिलते, एवं लुप्त होते हुए कुछ धातुओं का उपयोग काव्य को बहुत आकर्षक बनाते हैं।

दुर्गासप्तशती की पद्धतियों में तन्त्रागमोक्त अत्यन्त प्रभावशालिनी दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला के विश्लेषणरूपी इन सुन्दर श्लोकों को ले लीजिए, या दैवीय भावनाओं को व्यक्त करने के लिए स्रग्धरा, भुजङ्गप्रयात. प्रमाणिका, शार्दूलविक्रीडितादि अनेकानेक सुन्दर छन्दों का प्रयोग ले लीजिए, श्रीभागवतानंद जी की लेखनी से संस्कृत काव्य का यह धाराप्रवाह निर्झर की तरह हमें अपने ध्वनि, अपने स्पर्श और अपने प्राकृतिक सौंदर्य वाले दृश्यांशों से उत्साहित करता रहता है। इनके काव्य की समीक्षा करना अपने

आप में एक अनोखा अनुभव है। देवी नवरात्र के उपलक्ष्य में ऐसे ग्रन्थ का आगमन भक्तों के जीवन में एक वरदान ही है।

देवी दुर्गा की ३२ नामावली का प्रभाव उनके साधकों से अज्ञात नहीं है। इससे पूर्व, प्रत्येक नाम की शास्त्रीय सश्लोक व्याख्या कहीं उल्लिखित हो, यह ज्ञात नहीं होता है। इसकी फलश्रुति में स्वयं देवी दुर्गा ने समस्त भय का निवारण बताया है -

नामावलीमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः।
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः॥

इस ग्रन्थ की पीठिका में ग्रन्थलेखन का प्रयोजन स्पष्ट है तथा आदि एवं अन्त में भगवान् गोरक्षनाथ की अपरिमार्जित शाबर शैली निग्रहाचार्यकृत संस्तुति सम्मिलित की गयी है। मैं आशा करती हूं, ऐसे और भी शास्त्रीय रहस्यों से परिपूर्ण काव्य लिखने की शक्ति-सामर्थ्य एवं इच्छा इनके मन में होती रहे और यह हमारे लिए पारायण योग्य ऐसे ग्रन्थों की सृष्टि करते रहें।

सम्पादिका
उषाराणी सङ्का

--*

आद्यमङ्गलाचरणम् - गोरक्षाष्टकम्

(शाबर-पद्धति)

दिव्यार्कवह्नीन्दुसमप्रभाय
अद्वैतकैवल्यप्रदर्शकाय ।
आदेशमन्त्राभिनिषेचिताय
गोरक्षनाथाय नमस्करोमि ॥१ ॥

जिनकी आभा दिव्य सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि के समान है, जो अद्वैतमत से मोक्षमार्ग का प्रदर्शन करते हैं, 'आदेश' मन्त्र के द्वारा जिनकी स्तुति होती है, उन गोरक्षनाथ जी के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

तडित्प्रभाशुभ्रजटाधराय
हिरण्यगर्भाय हिरण्मयाय ।
मत्स्येन्द्रनाथाङ्घ्रिसुसेवकाय
गोरक्षनाथाय नमस्करोमि ॥२ ॥

चमकती हुई बिजली के समान उज्ज्वल वर्ण की जिनकी जटाएं हैं, जो सूर्य के समान तेजस्वी हैं और ब्रह्मज्ञान से युक्त हैं, जो सदैव अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी के चरणों की सेवा करते रहते

हैं, उन गोरक्षनाथ जी के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्वज्ञसर्वेन्द्रियनिग्रहाय
सर्वार्थसिद्धिप्रदयोगजाय।
सर्वेप्सितेभ्यः परिपूर्णधाम्ने
गोरक्षनाथाय नमस्करोमि ॥३ ॥

जो सर्वज्ञ हैं, जिन्होंने अपनी सभी इन्द्रियों को वश में रखा हुआ है,जो समस्त सिद्धियों के देने वाले योग से ही जन्मे हैं, जो सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले भंडार के समान हैं, उन गोरक्षनाथ जी के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

आदीशमार्गानुजरक्षकाय
संवित्परानन्दसुसंस्थिताय।
योगेश्वरायेन्द्रियकर्षिताय
गोरक्षनाथाय नमस्करोमि ॥४ ॥

आदिनाथ सदाशिव जी के द्वारा प्रदर्शित नाथपन्थ के साधकों की जो सदा रक्षा करते हैं, सदैव महान् और निश्चल ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं, उन योग के स्वामी, परम जितेंद्रिय गोरक्षनाथ जी के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

कौलेन्द्रसंज्ञाय कुलेश्वराय
कौलेश्वरीपन्थधुरन्धराय।
कौलाय सर्वागमनिर्भयाय
गोरक्षनाथाय नमस्करोमि ॥५॥

जो कौलेन्द्र कहाते हैं, कुल (यानी कुंडलिनी शक्ति) के स्वामी हैं, कौलेश्वरी नाथपन्थ की धुरी को धारण करने वाले हैं, कौल (ब्रह्मवेत्ता) हैं, तथा सभी आगमों से निर्भय हैं, उन गोरक्षनाथ जी के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

भक्तार्तिनाशाय कृपार्णवाय
समस्तविघ्नौघनिवारकाय।
ज्ञानाय विज्ञानयुताय तुभ्यं
गोरक्षनाथाय नमस्करोमि ॥६॥

अपने भक्त के दुःख का विनाश करने के लिए जो कृपा के समुद्र के समान हैं, सभी विघ्नसमूहों का जो निवारण कर देते हैं, विज्ञानसहित ज्ञानरूपी उन गोरक्षनाथ जी के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

महाष्टपाशैरजिताय लोक

आदित्यवर्षाधिकलेवराय।
रुद्रस्वरूपाय निरञ्जनाय
गोरक्षनाथाय नमस्करोमि ॥७ ॥

(भय,लज्जा,जुगुप्सा आदि) आठ महाबली पाशों से जो नहीं जीते जा सकते, सदैव बारह वर्ष के शरीर को धारण किये रहते हैं, दुःखों को दूर करने वाले रुद्र के अवतार हैं, परम सच्चिदानंदरूपी उन गोरक्षनाथ जी के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

अज्ञानसङ्घशकलीकृताय
सद्धर्मनिष्ठाय रसेश्वराय।
महावधूताय पुरातनाय
गोरक्षनाथाय नमस्करोमि ॥८ ॥

जिन्होंने अज्ञानसमूहों को टुकड़े टुकड़े करके नष्ट कर दिया है, सनातन धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं और रसेश्वर (भौतिक बाधा और शीत-उष्णादि द्वंद्वों से रहित) हैं, परम प्राचीन और महान् संन्यासी अवधूत वृत्ति को धारण करने वाले उन गोरक्षनाथ जी के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

--*

पीठिका

शास्त्रार्थे पराजित एकस्तन्त्रविशारदो निग्रहं प्रत्यपकीर्तिहेतवे कामपिशाचस्य प्रयोगञ्चकार। स निग्रहः पिशाचपीडितो महतीं पीडामवाप स्वगृहं त्यक्त्वा वनं वव्राज। नानायोगिनीकापालिकादिसाधकानुपायं पृच्छन् स निराशो न शान्तिं लेभे।

पैशाचाभिचारेण शनैः शनैस्स्वतान्मात्रिकीं शक्तिमपि क्षपयाञ्चकार तदा शबरीनारायणतीर्थे महानद्यां मुखपर्यन्तजले प्रविश्य कठोरचर्यां परिचरन् मन्त्रजपमकरोन्न साफल्यमाश।

स्वप्ने विप्रेण बोधितो नास्ति समीपेऽतिरिक्तकाल इति तदा प्रायोपविष्टो भूत्वा देहत्यागं करिष्यामीति निर्णयं कृत्वान्नजलं तत्याज। पुनर्दशवर्षकलेवरा कालिका देहि मे क्षत्रियबलिमिति स्वप्ने तस्य ववने, तथास्त्विति निग्रहः स्वप्ने बलिदानं ददौ। न ते मृतिकाल एष इति

कालिका। तदा निग्रहस्य जनकः स्वपुत्रगतिं वीक्ष्योवाच
न ते पिण्डं न वा श्राद्धं मुखाग्निर्न भविष्यति।
भूमौ न्यस्तशरीरो म्लेच्छपशुवत्प्रायोपविष्टे त्वयीति।
तद्वाक्यं श्रुत्वा निग्रहश्चिन्तयामास नैवं
रावणेभ्योऽप्यन्तिमसंस्कारवञ्चना ममेति
दौर्भाग्यविचित्रमेतत्।

कामपैशाचिकाक्रान्तः शान्तिमीक्षे न कुत्रचित्।
कदा सुखेन स्वप्तास्मि वाहमत्तास्मि पूर्ववत्॥
विश्वनाथे स्थिते भूमौ जगन्नाथे स्थिते तथा।
अनाथवत्स्थितोऽहं वै मुखाग्न्यादिबहिष्कृतः॥

पुनश्च श्मशानकालिकां गत्वा निशामुखे निग्रहमन्त्रं
लक्षपरिमाणञ्जजाप स्वगात्ररुधिरेण कामपिशाचस्य
तर्पणं कृत्वाभिचारशान्तिमकरोद्येन
पिशाचनिवृत्तिरभवत्। न मे कष्टे सुहृत्परिजनादयः
सहायका अभवन्निति मत्वा खिन्नमनस्कः स वैराग्योक्तिं
निग्रहगीतं वाचयामास।

निग्रहाचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित होकर एक तान्त्रिक ने उनकी अपकीर्ति की इच्छा से उनपर कामपिशाच का अभिचार कर दिया। उस पिशाच से पीडित होकर निग्रहाचार्य बहुत बड़े कष्ट में पड़ गये एवं अपने घर को छोड़कर वन में चले गये। अनेकों योगिनियों एवं कापालिक आदि साधकों से समाधान पूछते हुए वे निराश हुए एवं शान्ति प्राप्त न कर सके।

पिशाच के अभिचार के कारण धीरे धीरे वे अपनी तान्मात्रिकी शक्तियों को भी खो बैठे। उसके बाद शबरीनारायण तीर्थ में महानदी के भीतर मुखपर्यन्त जल में प्रवेश करके कठोर तपस्या का आश्रय लेकर मन्त्रों का जप करने लगे किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। 'तुम्हारे पास अब अधिक समय शेष नहीं है', स्वप्न में एक ब्राह्मण के ऐसा कहने पर निग्रहाचार्य ने प्रायोपवेशन व्रत का आश्रय लेकर 'मैं देहत्याग कर दूंगा', ऐसा निर्णय करके अन्न एवं जल का परित्याग कर दिया।

फिर स्वप्न में दशवर्ष का शरीर धारण करके कालिकादेवी ने 'मुझे एक क्षत्रिय की बलि दो', ऐसी याचना की। निग्रहाचार्य ने उन्हें 'ऐसा ही हो' कहा और स्वप्न में बलिदान प्रदान किया। कालिका देवी ने कहा कि अभी तुम्हारे मरने का समय नहीं आया है। फिर निग्रहाचार्य के पिता ने अपने पुत्र की गति को

देखकर कहा कि यदि तुम प्रायोपवेशन का आश्रय लेकर शरीर का परित्याग करोगे तो म्लेच्छ एवं पशु की भांति तुम्हारे शरीर को भूमि में दबा दिया जायेगा। न तुम्हें पिण्ड मिलेगा, न तुम्हारा श्राद्ध होगा और न ही तुम्हें मुखाग्नि दी जायेगी।

उनके ऐसे वाक्य को सुनकर निग्रहाचार्य ने सोचा कि रावण आदि को भी इस प्रकार से अन्तिम संस्कार से वञ्चित नहीं किया गया है, फिर मेरा यह कैसा विचित्र दुर्भाग्य है ? इस कामपिशाच से आक्रान्त होकर मैं कहीं भी शान्ति नहीं देखता हूँ। मैं पहले की भांति कब सुख से सो पाऊंगा, कब भोजन कर पाऊंगा ? विश्वनाथ और जगन्नाथ के इस पृथ्वी पर विराजमान होते हुए भी मैं मुखाग्नि आदि से भी बहिष्कृत होकर अनाथ के समान हो गया हूँ।

फिर श्मशानकालिका के पास जाकर रात्रि में निग्रहमन्त्र का एक लाख जप करके निग्रहाचार्य ने अपने शरीर के रक्त से कामपिशाच का तर्पण करके अभिचार की शान्ति की, जिससे वह पिशाच वापस लौट गया। मेरे कष्ट में मेरे सुहृत् एवं परिजनों ने मेरी सहायता नहीं की, ऐसा मानकर खिन्न मन वाले निग्रहाचार्य ने वैराग्यपरक वचनों (निग्रहगीत) को बोला।

--*

यशो मे गतं मे गता वंशकीर्ति -
र्गता सा प्रतिष्ठा च चित्तस्य शान्तिः।
पिशाचेन सम्पीडितं मां हि त्यक्त्वा
प्रयाताश्च सर्वे जना ये मदीयाः ॥०१ ॥

मेरा यश चला गया, मेरी वंशकीर्ति भी चली गयी, मेरी वह प्रतिष्ठा और चित्त की शान्ति भी नष्ट हो गयी। पिशाच से पीडित मुझे छोड़कर वे सभी लोग चले गये जो मेरे अपने थे।

न माता पिता नैव देवा न जाया
सुता नैव मित्राणि चान्ये जना वा।
सुहृद्वेशवन्तो हि प्राणान्तकाले
भवन्तीह रक्षाकरा हन्त मन्ये ॥०२ ॥

न माता, न पिता, न देवता, न पत्नी, न पुत्र, न मित्र और न ही अन्य लोग जो सुहृत् का वेश धारण किये हुए हैं, वे प्राणान्तकाल में रक्षा करते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

कुलायं यथा पक्षयुक्ताः खगा हि
त्यजन्तीक्षणार्थं पुनर्नाव्रजन्ति।

तथा बन्धुदारात्मजा भृत्यवर्गा -
स्त्यजन्त्यातुरं प्राणसङ्घातकाले ॥०३ ॥

जैसे पंख उग जाने पर पक्षीगण अपने घोंसले को छोड़ देते हैं और पुनः उसे देखने के लिये भी नहीं आते हैं, वैसे ही भाई-बन्धु, स्त्री, पुत्र एवं सेवक आदि भी प्राणों के निकलने के समय आतुर व्यक्ति को छोड़ देते हैं।

सुखेऽहं तवाहं तवाहं ब्रुवन्ति
न जानीमहे कोऽसि त्वं दुःखकाले।
वणिग्वृत्तयो देवसङ्घास्त्यजन्ति
तदा को मुकुन्दात्परश्चेह त्राता ॥०४ ॥

सुख के समय तो सभी लोग "मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा हूँ", ऐसा कहते हैं किन्तु दुःख के समय "तुम कौन हो, हम तुम्हें नहीं जानते", ऐसा कहते हैं। व्यवसायबुद्धि वाले देवतागण भी जब साथ छोड़ देते हैं तो उस समय भगवान् मुकुन्द के अतिरिक्त कौन रक्षक हो सकता है ?

सुपक्वं फलं पादपाद्भिन्नरूपं
धरां वै यथा जातिभावादनक्ति।

तथा देहमुक्तश्चिदानन्दरूपः
स्थितप्रज्ञजीवः परब्रह्म याति ॥०५॥

जैसे जब कोई फल अच्छी तरह से पक जाता है, तब वृक्ष से पृथक् होकर पृथ्वी की ओर अपने जातिगत स्वभाव के कारण चल पड़ता है, उसी प्रकार से देह से मुक्त होकर चिदानन्दरूप स्थितप्रज्ञ जीव परब्रह्म के प्रति गमन करता है।

(दुर्गा)

या दुर्गा दुर्गतत्त्वा सकलमुनिगणैश्चिन्तनैरप्यगम्या
दुर्ज्ञेया सर्वदेवैर्निखिलघटप्रपञ्चस्य धात्री च सूत्री।
सिंहस्कन्धस्थिता याष्टसमभुजधरा मेघगम्भीरघोषा
सा दुर्गा दुर्गरूपा सकलभवभयान्मामवेद्विश्वराज्ञी ॥०६॥

दुर्गा, जिसका तत्त्व गुप्त है, सभी मुनियों के द्वारा चिन्तन किए जाने पर भी जो समझ में नहीं आती हैं, सभी देवताओं के लिए भी जिन्हें जानना कठिन है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डस्थ विश्व का पालन एवं सञ्चालन करती हैं, जो सिंह के कन्धे पर बैठी हुई एवं आठ समान (रूप एवं बल वाले) भुजाओं को धारण करती हैं, जिनकी वाणी मेघ के समान गम्भीर है, वह सुरक्षित स्थान

के समान विश्व की साम्राज्ञी दुर्गा संसार के सभी भयों से मेरी रक्षा करें।

सृष्ट्यादौ या विधात्रे श्रणति हि सवनस्थामसङ्कल्पमेधां
स्थित्यर्थञ्चैव या एलयति विहगगं लोकसन्त्राणदक्षम्।
प्राप्ते संहारकाले पशुपतिरिडिकां रध्यतीच्छावशेन
सा दुर्गा दुर्गरूपा सकलभवभयान्मामवेद्विश्वराज्ञी ॥०७ ॥

जो सृष्टि के प्रारम्भ में विधाता को उत्पन्न करने की शक्ति एवं सङ्कल्प की बुद्धि प्रदान करती हैं, जो विश्व की रक्षा में निपुण गरुडगामी नारायण को स्थिति हेतु प्रेरित करती हैं, जिनकी इच्छा के वशीभूत होकर भगवान् पशुपति प्रलयकाल के उपस्थित होने पर विश्व का संहार कर देते हैं, वह सुरक्षित स्थान के समान विश्व की साम्राज्ञी दुर्गा संसार के सभी भयों से मेरी रक्षा करें।

दुर्गा दुर्गेति दुर्गेति तिमिरकलुषानुच्चरन् हन्ति जीवो
माहिष्यान्तप्रसङ्गे कुणपसुररणे प्रार्थिता देवसङ्घैः।
धीशान्तर्यामिनी या ससृभ निशिचरान् दुर्गसङ्कष्टहन्त्री
सा दुर्गा दुर्गरूपा सकलभवभयान्मामवेद्विश्वराज्ञी ॥०८ ॥

दुर्गा, दुर्गा, दुर्गा, इस प्रकार से उच्चारण करता हुआ जीव अपने अन्धकारमय पापों को नष्ट कर देता है। देवासुर संग्राम के मध्य महिषासुर के वध हेतु जिनकी देवताओं के द्वारा स्तुति की गयी थी एवं सबों की बुद्धि की स्वामिनी, सबके मन की बात को जानने वाली, घोर संकट का नाश करने वाली जिसने असुरों को मार डाला, वह सुरक्षित स्थान के समान विश्व की साम्राज्ञी दुर्गा संसार के सभी भयों से मेरी रक्षा करें।

(दुर्गार्त्तिशमनी)

दुर्गमं यत्पुरं तत्तु दुर्गमित्यभिधीयते।
भूम्या वृक्षैस्तथाद्भिश्च शैलैः खातैः समन्ततः ॥०९॥
कल्पितानि च दुर्गाणि वनैर्वापि जनैस्तथा।
दूषणो यस्तु दुर्गाणां दुर्गार्त्तिरिति कथ्यते ॥१०॥
उक्ता दुर्गार्त्तिशमनी तस्या नाशाय चोद्यता।
दुर्गार्त्तिशमनीं देवीं तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥११॥

जिस नगर में जाना कठिन हो, उसे दुर्ग कहते हैं। भूमि, वृक्ष, जल, पर्वत, चारों ओर की खाई, वन एवं लोगों के द्वारा दुर्गों की कल्पना (रचना) की जाती है। दुर्गों का जो दोष (क्षीणता) है, उसे दुर्गार्ति कहा जाता है। जो उस दुर्गार्ति दोष के नाश के लिए

तत्पर हो, वह दुर्गार्तिशमनी कही गयी है। ऐसी उस दुर्गार्तिशमनी दुर्गा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

(दुर्गापद्विनिवारिणी)

नानाक्लेशकरैरसद्गतिकरैराच्छादितं कर्मभिः
कुप्रारब्धमनेकदुःखनिचयं दुर्भोगदं किल्विषम्।
यायासेन विना निवारयति सा भक्तापदं सर्वतो
दुर्गापद्विनिवारिणी गिरिसुता श्रीपार्वती पातु नः ॥१२॥

विभिन्न प्रकार के कष्ट देने एवं असद्गति करने वाले कर्मों के द्वारा जो आच्छादित हैं, ऐसे अनेक दुःखों के भण्डार, खराब भोगों को देने वाले पाप को एवं अपने भक्तों के संकटों को जो सभी प्रकार से बिना प्रयास के ही समाप्त कर देती है, वह प्रबल आपत्ति को मिटाने वाली, पर्वतराज की पुत्री श्रीपार्वती हमारी रक्षा करें।

आधिव्याधिसमाकुलाश्च मनुजा यां यान्ति विश्रान्तये
दैत्येभ्यो वरदानदर्पदमितेभ्यस्त्राति देवानपि।
योगीन्द्रा अपि पञ्चक्लेशमथिता यामर्हयन्तीप्सया
दुर्गापद्विनिवारिणी गिरिसुता श्रीपार्वती पातु नः ॥१३॥

शारीरिक एवं मानसिक रोगों से व्याकुल होकर मनुष्य शान्ति के लिए जिनके पास जाते हैं, वरदान के घमण्ड से बोझिल हुए दैत्यों से जो देवताओं की भी रक्षा करती है, बड़े बड़े योगी भी पञ्चक्लेशों से मथे जाने पर इच्छापूर्वक जिनकी पूजा करते हैं, वह प्रबल आपत्ति को मिटाने वाली, पर्वतराज की पुत्री श्रीपार्वती हमारी रक्षा करें।

अन्नानुद्भवकाल आगत इराहीनां विलोक्याचलां
मा भीरित्यभयं ददौ सुरगणैरुक्तेति शाकम्भरी।
देव्याराधनयोक्षणोद्भवजलैर्वृष्टिस्तदाजायत
दुर्गापद्विनिवारिणी गिरिसुता श्रीपार्वती पातु नः ॥१४॥

जब पृथ्वी को जल से हीन देखा और अन्न के उत्पन्न न होने का समय (अकाल) आ गया है, ऐसा जाना, तब 'मत डरो', ऐसा कहकर जिसने सबों को अभय दिया और देवताओं ने जिसे 'शाकम्भरी', ऐसा कहा, तब जिस देवी की आराधना के द्वारा उसके नेत्रों से निकले जल के कारण वर्षा सम्भव हुई, वह प्रबल आपत्ति को मिटाने वाली, पर्वतराज की पुत्री श्रीपार्वती हमारी रक्षा करें।

(दुर्गमच्छेदिनी)

कायिकः कार्मिक आणविकश्चेति मलस्त्रिधा।
जीवकायनिकायेऽस्मिन्नपहार्या भवन्ति हि ॥१५॥
दुस्तरा दुर्गमा उक्ताः स्वोद्भूतोपक्रमेण च।
छेत्तुमेव न शक्नोति जीवोऽज्ञानवशीकृतः ॥१६॥
अज्ञाननाशनं कृत्वा मलान् हन्ति च दुर्गमान्।
दुर्गमच्छेदिनीं देवीं तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥१७॥

कायिक, कार्मिक एवं आणविक, यह तीन प्रकार के मल जीवों के त्रिविध शरीरनिकाय में रहते ही हैं, इनसे बचा नहीं जा सकता। इनसे पार पाना, इनका अतिक्रमण करना सम्भव नहीं, ऐसा बताते हैं। अज्ञान के वशीभूत होने से जीव स्वयं के प्रयास से इनका छेदन करने में समर्थ नहीं हो पाता है। अज्ञान का नाश करके जो इन दुर्गम मलों को समाप्त करती है, उस दुर्गमच्छेदिनी दुर्गादेवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

(दुर्गसाधिनी)

हरिकलङ्कहा जिष्णुकीर्तिदा रघुवरेण लङ्केशसङ्कुले।
जलजजेन सा दुर्गसिद्धये -

ऽपचितिसद्गता दुर्गसाधिनी ॥१८॥
विहतकामबीजेन क्वर्चया निखिलशत्रुसंहारपूर्वकम् ।
मिहिरवंशभूपः सुदर्शनो
भयविहीनतामेति सावतु ॥१९॥
विकटकृत्यसंसिद्धिदायिनी निगमकल्पवृक्षस्वरूपिणी ।
भुवनदुर्गरक्षापरा शिवा
मुनिभिरर्हिता दुर्गसाधिनी ॥२०॥

जिन्होंने श्रीकृष्ण के (स्यमन्तकजन्य) कलङ्क का नाश किया, जिन्होंने अर्जुन को कीर्ति प्रदान की, श्रीरामचन्द्र जी और जलज (कमल) से उत्पन्न ब्रह्मदेव के द्वारा लंकापति रावण के साथ हुए युद्ध में लंकापुरी को जीतने के लिए जिनकी विशिष्ट प्रकार से पूजा हुई, (ऐसे दुष्कर कार्यों की सिद्ध करने वाली) वह दुर्गसाधिनी है। अशुद्ध उच्चारण वाले कामबीज के द्वारा भी जिनके अविधिपूर्वक पूजन के माध्यम से भी समस्त शत्रुओं के संहार के साथ सूर्यवंशी राजा सुदर्शन भयमुक्त हो जाता है, वह रक्षा करें। दुष्कर कृत्यों में सफलता देने वाली, वेद रूपी कल्पवृक्ष का स्वरूप धारण करने वाली, संसाररूपी दुर्ग की रक्षा में तत्पर, कल्याणमयी, मुनियों के द्वारा पूजित देवी दुर्गसाधिनी हैं।

(दुर्गनाशिनी)

प्रकटमोहभाण्डं स्वकं मलं
चितिधृतिस्वरूपेण वारणे।
करुणया जनः शक्यते यया
मलहरेरिता दुर्गनाशिनी ॥२१॥
ग्रथितमोहविक्षेपकर्षितो
खलु विहिंसने देशिकं विना।
भवति शक्तिहीनः पुमान् सदा
भव निदेशि विक्षेपहात्मनः ॥२२॥
गुरुणा वात्मवीर्येणावरणं नैव खण्डितम्।
दुर्गं यस्मात्तयैवातः सा प्रोक्ता दुर्गनाशिनी ॥२३॥

जो अपने (स्थूल) मोह का संग्रहपात्र प्रकट है, अपने चित्त में धारणाशक्ति के माध्यम से उसके निवारण में व्यक्ति जिस कृपा के माध्यम से सक्षम होता है, उस मलहारिणी कृपा को दुर्गनाशिनी के नाम से कहा गया है। जो (सूक्ष्म) मोह उलझा हुआ है, उसके संहार में गुरु के बिना व्यक्ति निश्चय ही असमर्थ हो जाता है, अतः हे (संसार की) गुरुस्वरूपिणि ! आप आत्मा के विक्षेप को नष्ट करने वाली बनें। (तीसरा) जो आवरण है, वह गुरु अथवा अपने बल से खण्डित नहीं होता। वह दुर्ग

(कठोर) होने से दुर्गा के माध्यम से ही दूर होता है, अतः देवी को दुर्गनाशिनी कहा गया है। तात्पर्य यह है कि मल का नाश शिष्य के श्रम से, विक्षेप का नाश गुरु के उपदेश से एवं आवरण का नाश इष्ट की प्रसन्नता से होता है।

(दुर्गतोद्धारिणी)

विसर्गं स्वकं वीक्ष्य यां विश्वस्रष्टा
पुरा रात्रिसूक्तैर्ननावार्त्तवाग्भिः।
मधुं कैटभं नाशयित्वा विरिञ्चं
दिधिन्वापि सा मां दृगङ्गीकरोतु ॥२४॥

जब संसार की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी ने स्वयं को ही नष्ट होने की स्थिति में देखा, तब उन्होंने आर्तस्वर से रात्रिसूक्त के द्वारा स्तुति की। उस समय मधु और कैटभ का नाश करके जिस देवी ने उन्हें सुख प्रदान किया, वह मेरी ओर भी दृष्टिपात् करे।

निशुम्भेन शुम्भेन स्वर्लोकराज्ञो
यदा निष्कृता मेरुखातं गतास्ते।
तदा देवि चिक्षाय दैत्यान् सुराणां
भयं दुर्गतोद्धारिणि त्वं जजर्ज ॥२५॥

जब स्वर्ग के अधिपति देवगण शुम्भ एवं निशुम्भ के द्वारा बहिष्कृत कर दिए जाने से मेरु पर्वत की गुफाओं की ओर चले गये, तब दुर्गति में पड़े लोगों का उद्धार करने वाली हे देवि ! तुमने दैत्यों का नाश करके देवताओं के भय को दूर किया।

महापातकैरावृतैर्वाप्यकार्यै -
र्यदाकारिता त्वं कृपापूर्णदृष्ट्या।
पुनासीति विज्ञाय तान्त्वां महेऽहं
भवेद्दुर्गतोद्धारिणी शङ्करी मे ॥२६ ॥

बड़े बड़े अकृत्य महापातकों से घिरे लोगों के द्वारा भी जब पुकारी जाती हो तो अपनी कृपामयी दृष्टि से तुम उन्हें पवित्र कर देती हो, ऐसा जानकर मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ। वह दुर्गति में फंसे लोगों का उद्धार करने वाली 'दुर्गतोद्धारिणी' मेरा कल्याण करने वाली बने।

(दुर्गनिहन्त्री)

न दिवा न निशीथे च बहिरन्तस्तथैव च।
नोर्द्ध्वं नाधो न देवेन मनुष्येणासुरेण वा ॥२७ ॥
तिर्यग्भिर्न हि वध्यस्त्वमेवं दुर्गमैर्वरैः।
मत्वात्मानञ्च मृतिजिद्य आरेभेऽघविस्तरम् ॥२८ ॥

तं स्वर्णकशिपुं दुर्गं निश्चयेनाजघान या।
नृसिंहवपुषा दुर्गनिहन्त्री सेरिता जनैः ॥२९॥

न दिन में, न रात्रि में, न बाहर और भीतर, न ऊपर और नीचे, न देवता, मनुष्य या असुर के द्वारा, न किसी अन्य पशु आदि के द्वारा तुम मारे जाओगे, इस प्रकार से दुर्गम वरों के द्वारा स्वयं को मृत्युञ्जय मानकर जिसने पाप को बढ़ाना प्रारम्भ किया, उस पराक्रमी हिरण्यकशिपु को जिसने नृसिंह के शरीर को धारण करके निश्चयपूर्वक मार डाला, उसे ही लोगों के द्वारा दुर्गनिहन्त्री कहा गया है।

(दुर्गमापहा)

जगन्मुमुक्षवे विनाशतामुपैति विद्यया
यया लभन्त ईलिताः सुरेश्वराश्च श्रेयसम्।
कृतैकनिश्चया निवारणे च दुर्गमापद -
स्तनोतु विश्वगुप्तये शुभानि दुर्गमापहा ॥३०॥
शिवेन दग्धतां गतो रतीश्वरोऽशिवां कथा -
मवेणदकृतेच्छया रतिः पुनर्भवाय या -
मुपास्य सम्बभूव लब्धमङ्गला च सा शिवा
तनोतु विश्वगुप्तये शुभानि दुर्गमापहा ॥३१॥
भवे भवेऽभवे भवे भवेदघौघनाशनं

समस्तदुर्गकृन्तनं परञ्च नाम मङ्गलम्।
भवार्णवं तरन्ति येन नौरिवानने च मे
तनोतु विश्वगुप्तये शुभानि दुर्गमापहा ॥३२ ॥

जिस विद्या के माध्यम से संसार मुमुक्षु जनों के लिए समाप्त हो जाता है, जिसके माध्यम से बड़े बड़े पूजित देवताओं को भी कल्याण की प्राप्ति होती है, जो बड़े से बड़े संकट के निवारण हेतु भी द्दढ़ संकल्पिता है, वह 'दुर्गमापहा' संसार की रक्षा हेतु शुभता का विस्तार करे। शिवजी के द्वारा कामदेव भस्म कर दिए गये, इस अशुभ समाचार को सुनकर रति कामदेव को पुनर्जीवित करने की अकृतेच्छा के साथ जिसकी उपासना करके पुनः सौभाग्यवती हुई, वह कल्याणकारिणी 'दुर्गमापहा' संसार की रक्षा हेतु शुभता का विस्तार करे। हे शिवप्रिये ! जब यह जीवन समाप्त हो रहा हो, उस समय समस्त आपत्तियों का निवारण करने वाला, पापों के समूह का नाश करने वाला, परतत्त्ववाचक आपका मङ्गलकारी नाम, जिसे नौका के समान बनाकर लोग द्वारा भवसागर से पार जाते हैं, वह मेरे मुख में आ जाए एवं इस प्रकार से वह 'दुर्गमापहा' संसार की रक्षा हेतु शुभता का विस्तार करे। (शिवजी की क्रोधाग्नि से दग्ध प्राणी का पुनर्जीवन पहले कभी हुआ नहीं, यही देवी रति की इस प्रसङ्ग में दुर्गम अकृतेच्छा है)

(दुर्गमज्ञानदा)

दुर्गे पाशेन्द्रियाणामतिमलिनगते दुस्तरेऽस्मिन् शरीरे
दुर्गे नाकारयंस्त्वां भ्रमति परगतः कर्मभिर्ब्रह्मघट्टः ।
दुर्गे मोहे कजेन्मे न हि विहतमतिर्येन बोधागमेन
दुर्गे सा त्वं भव प्राङ्गिजकरकमलैर्दुर्गमज्ञानदा मे ॥३३ ॥

हे दुर्गे ! पाशरूपी इन्द्रियों के, अत्यन्त मलिनता को प्राप्त इस दुस्तर कर्कश शरीर में आपको न पुकारता हुआ ब्रह्म का अंश जीव कर्मपरतन्त्र होकर भटकता रहता है। कठिन मोह में मेरी आकुल मति जिस बोध के कारण मदमत्त न हो, हे दुर्गे ! तुम अपने प्रस्तुत करकमलों से मुझे वह दुर्गम ज्ञान देने वाली बनो।

दुर्गे मारीभये या पुरजननगरान् रक्षतीर्म्मेभ्य आङ्गान्
दुर्गेऽमित्रप्रघाते नरपतिपृतनाभ्यो जयं या ददाति ।
दुर्गे जिन्वत्यरण्ये निवसत इतरक्रान्तध्वस्तानसङ्गान्
दुर्गे सा त्वं भव प्राङ्गिजकरकमलैर्दुर्गमज्ञानदा मे ॥३४ ॥

कठिन महामारियों के आने पर जो सुकुमार नागरिकों की विषाणुओं से रक्षा करती है, क्रूर शत्रुओं के आक्रमण करने पर राजाओं की सेना को जो विजय प्रदान करती है, जिन्होंने इधर उधर घूमना छोड़कर संसार की ओर से अपने मन को हटा लिया

है, ऐसे दुर्गम वनों में रहने वाले तपस्वियों को जो सुखी रखती है, ऐसी हे दुर्गे ! तुम अपने प्रस्तुत करकमलों से मुझे दुर्गम ज्ञान देने वाली बनो।

दुर्गे सौरेर्निवासे गणगतिविधिभिस्ताडितैर्जीवसङ्घैः -
दुर्गे देहप्रसूनां जठरजठरगै रठ्यते नाम यस्याः।
दुर्गेऽकल्कप्रकल्पे दहरहरगतैर्ध्यानगम्याकृतिर्या
दुर्गे सा त्वं भव प्राङ्गिजकरकमलैर्दुर्गमज्ञानदा मे॥३५॥

भयंकर नरक में यमदूतों को द्वारा मारे जा रहे एवं शरीर को जन्म देने वाली माता के क्लेशदायक गर्भ में स्थित जीवों के द्वारा जिसका नाम पुकारा जाता है, तेजोमय स्थान वाले दहराकाश में जिस आकृति का ध्यान किया जाता है, वैसी हे दुर्गे ! तुम अपने प्रस्तुत करकमलों से मुझे दुर्गम ज्ञान देने वाली बनो।

(दुर्गदैत्यलोकदवानला)

स्ववीर्यदर्पदृप्तानामसुराणां दुरात्मनाम्।
दुर्गमवृतिपुष्टानामरण्यमिति सञ्ज्ञया॥३६॥
लक्षणग्रहणं कृत्वा वह्निना प्रदहन्ति ते।
यथा देव्या तथैवेतेऽसुरा नष्टा भवन्ति च॥३७॥

स्वोद्भूतकर्षणेनैव दग्धं भवति काननम्।
अघैर्दैत्यास्तथा दुर्गदैत्यलोकदवानला॥३८॥

क्लिष्ट वरों से पुष्ट, अपने पराक्रम के घमण्ड में चूर दुरात्मा असुरों को 'वन' मानते हुए उसके उपलक्षण से, जैसे वन अग्नि से जल जाते हैं, वैसे ही देवी के द्वारा वे राक्षस नष्ट कर दिए जाते हैं। आपस में हुए घर्षण से जैसे जंगल जलते हैं, वैसे ही अपने पापों से दैत्य भी नष्ट होते हैं, इस प्रकार से वह देवी 'दुर्गदैत्यदवानला', अर्थात् भयंकर दैत्यों के समूहरूपी वन को भस्म करने में अग्नि के समान है।

(दुर्गमा)

निर्गुणा दुर्गमा शक्तिर्निर्गुणश्च सदाशिवः।
ज्ञानगम्यावुभौ नृणां भावनीयौ मुहुर्मुहुः॥३९॥
दूरदेशान्तरचरी दुर्गमार्गवशानुगा।
सर्वभूतैरगम्या या दुर्गमा सा प्रकीर्तिता॥४०॥
दुर्लङ्घ्या दुस्तरा माया मेति प्रोक्तात्मपारगैः।
मिनोति माययात्मानं नस्त्रायाद्दुर्गमा शिवा॥४१॥

दुर्गमा शक्ति निर्गुणा होती है, सदाशिव भी निर्गुण हैं। मनुष्यों के द्वारा ज्ञानमार्ग से उनका बोध होता है, उनका बारम्बार

चिन्तन करना चाहिए। सुदूर देशों में भी जो व्याप्त है, कष्टप्रद (तपस्या आदि) मार्गों के आश्रय में है, सभी प्राणियों के द्वारा जिस तक पहुंचना कठिन है, वह दुर्गमा कही गयी है। जिसका अतिक्रमण करना और पार जाना कठिन है, उस माया को 'मा' कहते हैं, ऐसा आत्मज्ञानियों का कहना है। उस माया के द्वारा जो अपना विस्तार करती है, वह कल्याणरूपिणी 'दुर्गमा' हमारी रक्षा करें।

(दुर्गमालोका)

यो दुर्गमश्च सूर्यस्य प्रकाशो नैव भासते।
लोकाद्बहिस्त्वलोकाख्यो लोकविद्भिर्निगद्यते ॥४२ ॥
लोको हि द्विविधः प्रोक्तः स्थावरो जङ्गमस्तथा।
भूरादयः स्थावराश्च जङ्गमं तु कलेवरम् ॥४३ ॥
लोकाभ्यां या परा लोकान्तरेऽलोके च दुर्गमे।
वासेन दुर्गमालोका सा प्रोक्ता मन्य इत्यहम् ॥४४ ॥

जहाँ जाना कठिन है, जहाँ सूर्य का प्रकाश भी नहीं पहुंचता है, लोकों से बाहर उस क्षेत्र को लोकवेत्ताओं के द्वारा 'अलोक' कहा जाता है। लोक भी दो प्रकार का बताया गया है, स्थावर एवं जङ्गम। जो पृथ्वी आदि हैं, ये स्थावर लोक हैं तथा शरीर को जङ्गम कहते हैं। इन दोनों प्रकार के लोकों से परे लोकान्तर के

दुर्गम 'अलोक' में जो रहती है, उसे 'दुर्गमालोका' कहा जाता है, ऐसा मैं समझता हूँ।

(दुर्गमात्मस्वरूपिणी)

भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथैव च।
आत्मा च परमात्मा च सा शक्तिः पञ्चधा स्थिता ॥४५ ॥
जडया जाड्यभावेशी चिदीशा चिन्मयात्मिका।
वासनारूपिणी शक्तिरिन्द्रियेषु स्थितात्मनः ॥४६ ॥
आत्मनो दुर्गमं रूपमुक्तं पञ्चेषु या स्थिता।
सोच्यते निगमे देवी दुर्गमात्मस्वरूपिणी ॥४७ ॥

भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, आत्मा एवं परमात्मा, इन पांचों रूपों में शक्ति स्थित रहती है। जड़ता के आश्रय से जड़भाव (देहभाव) की स्वामिनी होती है, चिन्मयात्मिका होने से चित् (चेतनभाव) की स्वामिनी होती है। आत्मा से आविष्ट इन्द्रियों में शक्ति वासना के रूप से स्थित रहती है। आत्मा का यह रूप 'दुर्ग' बताया गया है। इन पांचों में जो स्थित रहती है, उस देवी को वेदों में 'दुर्गमात्मस्वरूपिणी' कहा जाता है।

(दुर्गमार्गप्रदा)

कालव्यालसमाक्रान्ते जगत्यस्मिन्ननाथवत्।
भ्रममाणाय जीवाय दुर्गमो ब्रह्मणः पथः ॥४८॥
साध्यसाधनयोर्मध्ये साधकोऽयं मुहुर्मुहुः।
विषयेन्द्रियनिर्दग्धोऽसिद्धिं नेष्टां प्रणीयते॥४९॥
ब्रह्मणो दुर्गमं मार्गं सिद्धिभूतं ददाति या।
दुर्गमार्गप्रदा प्रोक्ता सा सद्भक्ताय मानुषैः ॥५०॥

कालरूपी सर्प के द्वारा आक्रान्त इस संसार में अनाथ की भांति भटकते हुए जीव के लिए ब्रह्म के मार्ग दुर्गम है। साध्य एवं साधन के मध्य यह साधक बारम्बार विषय एवं इन्द्रियों के द्वारा जलाया जाकर अप्रिय असिद्धि को प्राप्त करता है। ब्रह्म के उस दुर्गम मार्ग को सिद्ध करके जो अपने उत्तम भक्त को प्रदान करती है, उसे मनुष्यों के द्वारा 'दुर्गमार्गप्रदा' कहा जाता है।

(दुर्गमविद्या)

द्वे विद्ये वेदितव्येऽत्र निगमोक्ते परापरे।
चतुर्दशापरा विद्या परा ब्रह्मार्थबोधिनी॥५१॥
गुरुगम्यापरा विद्या परा चेष्टप्रसादतः।
त उभे दुर्गमे प्रोक्तेऽबोध्येऽश्रद्धायुतैर्जनैः ॥५२॥

अन्यस्य न परा विद्या शिष्यस्यैषा हि सिद्ध्यति।
तस्माद्दुर्गमविद्या सा प्रोक्ता विद्याविचक्षणैः ॥५३॥

वेदों में बतायी गयी परा एवं अपरा नाम की दो विद्याओं को जानना चाहिए। अपरा विद्या चौदह प्रकार की है एवं परा विद्या ब्रह्मतत्त्व का बोध कराती है। अपरा विद्या का ज्ञान गुरुमुख से एवं परा विद्या का बोध इष्ट की कृपा से होता है। ये दोनों ही दुर्गम हैं एवं अश्रद्धा वाले लोगों को समझ में नहीं आ सकतीं। शिष्य की ही परा विद्या सिद्ध होती है, अन्य की नहीं। अतएव विद्या के रहस्य को जानने वालों के द्वारा इसे 'दुर्गमविद्या' कहा गया है।

(दुर्गमाश्रिता)

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत्।
शब्दोऽपि द्विविधः प्रोक्तः परापरविभेदतः ॥५४॥
परञ्चापि द्विधा प्रोक्तं निर्गुणं सगुणं तथा।
सविशेषं निर्गुणञ्च निर्विशेषमिति द्विधा ॥५५॥
सगुणञ्च द्विधा प्रोक्तमथांशांशिप्रभेदतः।
भवेदेतेषु दुर्गेषु व्यापिता दुर्गमाश्रिता ॥५६॥

दो प्रकार के ब्रह्म को जानना चाहिए - शब्दब्रह्म एवं परब्रह्म। शब्दब्रह्म भी दो प्रकार का बताया गया है - पर (परावाणी) एवं अपर (शास्त्रादि)। परब्रह्म भी दो प्रकार का है - सगुण एवं निर्गुण। इसमें निर्गुण भी दो प्रकार का है - सविशेष एवं निर्विशेष। सगुण को भी अंश और अंशी भेद से दो प्रकार का बताया गया है। इन दुर्गम ब्रह्मरूपों में जो व्याप्त है, वह 'दुर्गमाश्रिता' है।

(दुर्गमज्ञानसंस्थाना)

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानमिति भागवती श्रुतिः।
ऋते ज्ञानान्न मुक्तिस्स्यादिति माहेश्वरी श्रुतिः ॥५७॥
तत्त्वतो ब्रह्मबोधेन विद्ययामृतमश्नुते।
न पुनर्जन्म गृह्णाति प्रोक्ता वैनायकी श्रुतिः ॥५८॥
श्रद्धया सेवया ज्ञानञ्जायते हृदि दुर्गमम्।
दुर्गमज्ञानसंस्थाना तस्मिन् ज्ञाने च या स्थिता ॥५९॥

भागवती श्रुति कहती है कि जो श्रद्धा से युक्त है, उसे ही ज्ञान प्राप्त होता है। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती, ऐसा माहेश्वरी श्रुति का कहना है। तत्त्वतः ब्रह्मबोध हो, तब ब्रह्मविद्या से जीव अमृतत्व का उपभोग करता है (मुक्त होता है), और उसका पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसी वैनायकी श्रुति है। श्रद्धा और सेवा से

हृदय में दुर्गम ज्ञान उत्पन्न होता है। उस दुर्गम ज्ञान में जो स्थित हैं, वह 'दुर्गमज्ञानसंस्थाना' है।

(दुर्गमध्यानभासिनी)

द्वैतबुद्ध्या सकामेन ध्येया सा जठरे जनैः।
हृदि निष्कामभावेन योगिभिर्ध्यायते तथा ॥६० ॥
अद्वैतवादिभिर्ध्येया सहस्रदलपङ्कजे।
एवं योगञ्च भोगञ्च भक्तेभ्यो वितनोति सा ॥६१ ॥
त्रिषु स्थानेषु ध्यानेन दुर्गमालोकिता च या।
सा प्रोक्ता ध्यानसंसिद्धैर्दुर्गमध्यानभासिनी ॥६२ ॥

सकाम भाव से द्वैतबुद्धि के द्वारा अपने उदर में (नाभि के पास) लोगों के द्वारा उसका ध्यान किया जाना चाहिए। निष्काम भाव से योगियों के द्वारा हृदय में उसका ध्यान किया जाता है। अद्वैतवादियों के द्वारा उसका ध्यान सहस्रार चक्र में करना चाहिए। इस प्रकार से वह अपने भक्तों में योग एवं भोग का विस्तार करती है। इन तीनों स्थानों में ध्यान के द्वारा जिसका दुर्गम प्रकाश फैलता है, उसे ध्यानमार्ग में सिद्ध हुए जनों के द्वारा 'दुर्गमध्यानभासिनी' कहा जाता है।

(दुर्गमोहा)

जनको मे च माता मे ममेयं गृहिणी गृहम्।
अयमन्यो मदीयो मोहो ममत्वं प्रकीर्तितः॥६३॥
मोहो धर्मविमूढत्वं बुद्धिभेदो व्यतिक्रमः।
अज्ञानन्तु फलं तस्य मरणे पतनं ध्रुवम्॥६४॥
देहादिष्वात्मबुद्धिर्या दुर्गमा सा प्रकीर्तिता।
मोहेन मुह्यते जन्तुर्दुर्गमोहा तथेरिता॥६५॥

यह मेरे पिता हैं, यह मेरी माता हैं, यह मेरी पत्नी और घर है, यह मेरा है, यह दूसरे का है, यह ममता मोह कहलाती है। धर्म के विषय में मूढ़ता के कारण बुद्धि में जो भ्रम और संशय होता है, वह मोह है। अज्ञान इसका परिणाम है और मरने के बाद इसके कारण पतन होता है। देह में जो आत्मबुद्धि हो जाती है, वह दुर्गमा है (उसे समाप्त करना कठिन बताया गया है)। जीव इस मोह से मोहित रहता है इसीलिए देवी को 'दुर्गमोहा' कहते हैं।

(दुर्गमगा)

सूत्रे प्रकरणे भाष्ये वार्तिकेषु विशेषतः।
आप्तोपदिष्टशब्देषु प्रोक्ता या ब्रह्मरूपिणी॥६६॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु या गाथा रूपकान्विताः।

भवन्ति सज्जनैर्ज्ञेयाः संसिद्ध्यानेकजन्मनः ॥६७ ॥
दुर्बोध्या दुर्गमा गाथा प्रोक्ता दुर्गमगा तथा ।
एवं सा ब्रह्मगाथा च बुद्धिं मे सर्वदावतु ॥६८ ॥

सूत्र, प्रकरण, भाष्य और विशेषकर वार्तिकों में, महापुरुषों के वचनों में जो ब्रह्मरूपिणी कही गयी है; वेद, स्मृति एवं पुराणों में रूपकों के आश्रय से जो गाथाएं कही गयी हैं, वे अनेकों जन्मों की सिद्धि के बाद सज्जनों को समझ में आती हैं। ये गाथा दुर्गम हैं, कठिनता से समझ में आने वाली हैं, अतएव दुर्गमगा कहलाती हैं। इस प्रकार की वह ब्रह्मगाथा सदैव मेरी बुद्धि की रक्षा करे।

(दुर्गमार्थस्वरूपिणी)

अर्थस्तु त्रिविधः शब्दे वाच्यलक्ष्यार्थव्यङ्ग्यतः ।
धर्मार्थकाममोक्षैर्वा चतुर्धा पुरुषे तथा ॥६९ ॥
न सामान्यधिया गम्यो गम्योऽर्थस्तु विशिष्टया ।
बोधाचरणमार्गाभ्यामितरो नैव भूतले ॥७० ॥
यया श्रुतेर्दुर्गमार्थः स्वरूपे धार्यते सदा ।
सा देवी निगमैरुक्ता दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥७१ ॥

शब्द में वाच्य, लक्ष्य एवं व्यङ्ग के भेद से तीन प्रकार के अर्थ बताए गये हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के भेद से पुरुष में चार (पुरुषार्थ) होते हैं। सामान्य बुद्धि से अर्थ समझ में नहीं आता है, उसे विशिष्ट बुद्धि से समझना चाहिए। पहले बोध और फिर आचरण से ही वह समझ में आएगा, इसके अतिरिक्त पृथ्वी पर दूसरा उपाय नहीं है। जिसके द्वारा अपने स्वरूप में सदैव श्रुति का दुर्गम अर्थ धारण किया जाता है, वह देवी वेदों के द्वारा 'दुर्गमार्थस्वरूपिणी' कही गयी है।

(दुर्गमासुरसंहन्त्री)

दुर्गमो रुरुणा जातो हिरण्याक्षात्मजेन च।
सहस्त्रवर्षपर्यन्तं चकार दुष्करं तपः ॥७२॥
स ब्रह्मवचनाद्वेदानहरत्तापहेतवे।
तदा लुप्तमभूद्विश्वे वेदज्ञानञ्च कृत्स्नशः ॥७३॥
देवैराराधिता दुर्गारूपेण दुर्गमं तदा।
दुर्गमासुरसंहन्त्री जघानेति प्रकीर्तितः ॥७४॥

हिरण्याक्ष के पुत्र रुरु के द्वारा दुर्गम का जन्म हुआ था। उसने एक सहस्त्र वर्षों तक घोर तपस्या की। ब्रह्मदेव के वरदान के अनुसार (संसार को) कष्ट देने की इच्छा से उसने वेदों का अपहरण कर लिया। तब विश्व में वेदों का ज्ञान सम्पूर्णता से लुप्त

हो गया। देवताओं के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर दुर्गारूप से देवी ने तब दुर्गम दैत्य का वध किया, इस प्रकार उनका नाम दुर्गमासुरसंहन्त्री हुआ, ऐसा बताया गया है।

(दुर्गमायुधधारिणी)

शूलबाणगदाचक्रपाशर्ष्टिभिन्दिपालकैः।
सज्जितोद्यतहस्ता च भूत्वा हन्ति महासुरान्॥७५॥
वारुणेन्द्रशशीशानामादित्यहरिब्रह्मणाम्।
दिव्यास्त्राणि च या धत्तेऽनायासेन जगत्प्रसूः॥७६॥
ददाति प्रतिगृह्णाति देवेभ्यो जनगुप्तये।
सा दुर्गा कथिता लोके दुर्गमायुधधारिणी॥७७॥

शूल, बाण, गदा, चक्र, पाश, खड्ग, भिन्दिपाल आदि के द्वारा सज्जित होकर, उन्हें हाथों में उठाकर जो बड़े बड़े दैत्यों के संहार करती हैं; वरुण, इन्द्र, चन्द्रमा, शिव, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा के दिव्यास्त्रों को जो जगज्जननी बिना परिश्रम के ही धारण करती हैं और संसार की रक्षा हेतु देवताओं को देती और उनसे पुनः प्राप्त करती हैं, उन दुर्गादेवी को 'दुर्गमायुधधारिणी' कहते हैं।

(दुर्गमाङ्गी)

आब्रह्मतलपर्यन्तं सर्वं देवीमयञ्जगत्।
दुर्गमञ्चाङ्गरूपोक्तं पटसूत्रविवक्षया ॥७८॥
वाङ्मयी सा पराशक्तिर्निगमागमरूपिणी।
दुर्गमाण्यन्यशास्त्राण्यङ्गीभूतानि बिभर्ति च ॥७९॥
शेकुर्न वृश्चणेऽङ्गानां यस्या दैत्या महाबलाः।
दुर्गमाङ्गी च सा प्रोक्ता तस्मात्तत्त्वविशारदैः ॥८०॥

ब्रह्मलोक से पातालपर्यन्त सबकुछ देवीमय है और यह दुर्गम संसार वस्त्र और सूत्र की भांति उनके अङ्ग के समान है। वह वाङ्मयी पराशक्ति वेद और तन्त्र से युक्त स्वरूप वाली है जो अन्य दुर्गम शास्त्रों को भी अपने अङ्गों के रूप में धारण करती है। जिसके अङ्गों को काटने में महाबली दैत्य समर्थ न हो सके, उसे इन कारणों से तत्त्वज्ञ जन दुर्गमाङ्गी कहते हैं।

(दुर्गमता)

सर्गस्थितिविसर्गेषु निग्रहानुग्रहे तथा।
क्रियास्तनोति या देवी सूयते सा च ता स्मृता ॥८१॥
खाते वने गिरौ दुर्गे सिन्धौ दुर्गमता च या।
विजये शत्रुसैन्यानामिन्द्रियाणाञ्च निग्रहे ॥८२॥

व्यापिता तास्वरूपेण या पिपर्त्ति च दुर्गमान्।
तनोति चैव सा देवी तस्माद्दुर्गमता स्मृता ॥८३ ॥

सृष्टि, स्थिति, प्रलय, निग्रह एवं अनुग्रह कर्म में क्रियाभाव की जो उत्पत्ति तथा विस्तार करती है, उसे 'ता' कहते हैं। गुफा, वन, पर्वत, किला, समुद्र आदि (दुर्गम क्षेत्रों में जाने) में जो दुर्गमता है, शत्रुओं की सेना को जीतने अथवा इन्द्रियों के नियन्त्रण में जो कठिनाई होती है, उसमें इन दुर्गमों का 'ता' स्वरूप से व्याप्त होकर जो पालन और विस्तार करती है, वह देवी इस कारण से 'दुर्गमता' कहलाती है।

(दुर्गम्या)

दुर्गम्या वचसां शान्ता देहानामनुवर्तिनी।
शक्तिरष्टस्वरूपैश्च लोकानामनुवर्तिनी ॥८४ ॥
ब्रह्मादीनां ततोऽगम्या तथा स्वर्लोकवासिनाम्।
सङ्कल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी ॥८५ ॥
लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम्।
गम्या भवति सा तस्माद्दुर्गम्या शक्तिरुच्यते ॥८६ ॥

वाणी के द्वारा (वर्णन करके) उस तक नहीं पहुंचा जा सकता, वह शान्त है। वह शक्ति आठ स्वरूपों (भूमि, जल, अग्नि, वायु,

आकाश, मन, बुद्धि एवं अहङ्कार) के माध्यम से शरीरों तथा लोकों में भ्रमण करती है। ब्रह्मा आदि के लिए एवं स्वर्गलोक के निवासियों के लिए भी उस तक पहुंचना सम्भव नहीं है। सङ्कल्प के द्वारा उसकी सिद्धि होती है, वह (त्रिगुणों की) साम्यावस्था में स्थित है, सभी प्रकार के विशिष्ट ज्ञान को देती है। विभिन्न शरीरों और लोकान्तरों में भ्रमण को छोड़कर (मुक्त जीव) ही उस तक पहुंच सकता है, अतएव वह शक्ति 'दुर्गम्या' कहलाती है।

(दुर्गमेश्वरी)

क्लेशकर्मविपाकानां सञ्ज्ञा भवति दुर्गमः।
अलङ्घ्या जीवसङ्घानामावागमनहेतवः ॥८७ ॥
रागद्वेषास्मिताविद्याभिनिवेशात्परा च या।
रहिता पुण्यपापेभ्यो मिश्रहीनैश्च कर्मभिः ॥८८ ॥
कर्माणि यां न बाधन्ते न क्लेशा वा च दुर्गमाः।
एतेषामीश्वरी या सा कथिता दुर्गमेश्वरी ॥८९ ॥

क्लेश एवं कर्मविपाक की 'दुर्गम' संज्ञा होती है क्योंकि जीवसमूह इनसे पार नहीं जा सकता और ये जीव के पुनरागमन के कारण हैं। राग, द्वेष, अविद्या, अस्मिता एवं अभिनिवेश, इनसे जो परे है, पुण्य, पाप, पुण्यपापमिश्रित एवं पुण्यपापरहित कर्म से जो रहित है, जिसे ये दुर्गम क्लेश और कर्म बाधित नहीं

कर सकते और जो इनकी स्वामिनी है, उसे 'दुर्गमेश्वरी' कहा गया है।

(दुर्गभीमा)

या रक्तबीजं रुधिराशनेन चक्राथ खड्गेन च चण्डमुण्डौ।
ददाह धूम्रेक्षणमक्ष्णवाचा
प्रोक्तान्तकेशी खलु दुर्गभीमा॥९०॥

जिसने रुधिर पीने रूपी कर्म से रक्तबीज को और खड्ग से चण्ड-मुण्ड का संहार कर दिया, जिसने कालरूपिणी वाणी से धूम्रलोचन को भस्म कर दिया, वह मृत्यु की स्वामिनी 'दुर्गभीमा' कही गयी है।

दक्षस्य यज्ञपरिधौ गमनोत्सुका या
चेशानवारणगताकुलचित्तक्रुद्धा।
विद्यास्वरूपदशकेन भयङ्करेण
सा शम्भुभीमभयदा खलु दुर्गभीमा॥९१॥

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जाने की इच्छा वाली जिसे शिव जी के द्वारा रोक दिया गया और तब व्याकुल चित्त एवं क्रोध से दश भयंकर (महा) विद्याओं के स्वरूप से जिसने शिव जी को भीषण भय दिया, वह दुर्गभीमा है।

प्रालेयभूधरगतानसुराञ्च दुर्गान्
दंष्ट्रैस्ततर्द मुनिभिः प्रणतैरसङ्ख्यैः।
सम्प्रार्थिता विकटरूपधरा च भीमा
दुर्गासुरप्रमथनी खलु दुर्गभीमा ॥९२ ॥

असङ्ख्य शरणागत मुनियों के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जिसने हिमालय में रहने वाले कठोर असुरों को अपने दांतों से फाड़कर मार डाला, वह भयङ्कर स्वरूप वाली भीमा, प्रचण्ड असुरों को मारने वाली, दुर्गभीमा है।

(दुर्गभामा)

सङ्कल्पसिद्धवपुषाब्जसमुद्भवश्च
देवान्पशूंश्च मनुजानसुरान्महर्षीन्।
भूतेन्द्रियाणि रचयन्नतिदुर्गकृत्या
दुर्गाभिधोऽजगृहिणी खलु दुर्गभामा ॥९३ ॥

सङ्कल्पशक्ति से सिद्ध शरीर के माध्यम से ब्रह्माजी देवता, पशु, मनुष्य, असुर, महर्षि, पञ्चभूत, इन्द्रियसमूह आदि की रचना अत्यन्त कठिन क्रिया के द्वारा करते हुए दुर्ग कहलाते हैं और उनकी पत्नी दुर्गभामा कहलाती है।

नानावतारविधिना व्यसने निमग्नं
विश्वं प्रपालयति पन्नगतल्पशायी।
दुर्गाभिधो भवति रक्षणदुर्गकृत्या
वैकुण्ठनाथगृहिणी खलु दुर्गभामा ॥९४॥

शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाले भगवान् विष्णु विभिन्न अवतारों के माध्यम से सङ्कट में फंसे संसार की रक्षा करते हैं। इस रक्षारूपी कठिन कार्य के कारण उनका नाम दुर्ग है और उन वैकुण्ठनाथ की पत्नी दुर्गभामा कहलाती हैं।

कल्पान्तकालविधिताण्डववेषवर्ती
शूलेन संहरति सर्गनिकायमीशः।
दुर्गाभिधो भवति तक्षणदुर्गकृत्या
दक्षान्तकस्य गृहिणी खलु दुर्गभामा ॥९५॥

कल्प का अन्त करने वाले भगवान् शिव ताण्डवस्वरूप धारण करके अपने शूल से समग्र संसार का संहार करते हैं। इस विनाशरूपी कठिन कार्य के कारण उनका नाम दुर्ग है और दक्ष का अन्त करने वाले उन महादेव की पत्नी दुर्गभामा कहलाती हैं।

(दुर्गभा)

आलोकयति संसारं सूर्यचन्द्रानलदृशा।
यस्या एते प्रकाशन्ते कोटिकोट्यंशरश्मिभिः ॥९६ ॥
स्वयम्प्रभा स्वयम्पूर्णा दुर्निरीक्ष्या चिदात्मिका।
न यत्र भौतिकानाञ्च सूर्यादीनां गतिर्भवेत् ॥९७ ॥
न भासयति तां कोऽपि कृत्स्नं भासयते यया।
प्रोक्तामितप्रभापूर्णा दुर्गभा सा महर्षिभिः ॥९८ ॥

जो सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि रूपी नेत्रों से संसार को आलोकित करती है, ये तीनों जिसकी रश्मि के करोड़वें के करोड़वें अंश से प्रकाशित होते हैं। जो स्वयं पूर्णरूपा अपने प्रकाश से प्रकाशित होती हैं, जिस चेतनस्वरूपा को देखना बहुत कठिन है, जहाँ पर ये भौतिक सूर्यादि की गति नहीं होती, जिसे कोई दूसरा प्रकाशित नहीं करता है, अपितु जिसके द्वारा सबकुछ प्रकाशित होता है, उस परिमाणरहित प्रकाश वाली देवी को महर्षियों के द्वारा 'दुर्गभा' कहा गया है।

(दुर्गदारिणी)

यया व्यामोहभेदेन जगद्दुर्गं विदार्यते।
भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥९९ ॥

यया देव्या कृपादृष्ट्या यस्यां दृष्टेऽखिलात्मनि।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सा प्रोक्ता दुर्गदारिणी॥१०० ॥
शतश्लोकाधिका ह्येषा चन्द्रिकाख्याभयङ्करी।
निग्रहेण कृता पूर्णा दुर्गादेव्यै समर्प्यते॥१०१ ॥

जिसकी कृपा दृष्टि से प्रबल मोह का छेदन करके संसारदुर्ग को विदीर्ण किया जाता है, हृदय की गांठ टूट जाती है, सभी संशय नष्ट हो जाते हैं, जिसमें अपना सम्पूर्ण रूप एकीकृत दिखने पर इस जीव के सभी कर्मबन्धन क्षीण हो जाते हैं, उसे 'दुर्गदारिणी' कहा गया है। निग्रहाचार्य के द्वारा लिखी गयी अभय प्रदान करने वाली यह सौ श्लोकों से अधिक (१०१) की चन्द्रिका नाम की रचना पूर्ण होती है, इसे दुर्गादेवी के प्रति समर्पित किया जाता है।

॥इति श्रीमन्निग्रहाचार्यकृता चन्द्रिका सम्पूर्णा॥
इस प्रकार से निग्रहाचार्य के द्वारा लिखी गयी चन्द्रिका पूर्ण हुई।

अन्त्यमङ्गलाचरणम् - गोरक्षपञ्चकम्

(शाबर-पद्धति)

(जय) जय जय जय गोरक्षनाथ ! आदेश नमो ! देवाधिदेव !
(जय) आदिनाथ ! पशुपते ! स्वयम्भो ! शम्भो हर हर महादेव !

सर्वभूतपरिवारव्यालविकरालहारगात्रे रचितं
जन्मदुःखनिर्मूलशूलधृतदण्डहस्तमशुभं शमितम्।
सिद्धवृन्दगन्धर्वसङ्घमधुरं अनुपमगीतं चरितं
रक्ष रक्ष गोरक्ष सर्वनिधिदक्ष भक्ष सकलं दुरितम्॥०१॥
(जय) जय जय जय गोरक्षनाथ ! आदेश नमो ! देवाधिदेव !
(जय) आदिनाथ ! पशुपते ! स्वयम्भो ! शम्भो हर हर महादेव !

ब्रह्मज्ञानविज्ञानसत्त्वयुतमुक्तपाशभवभयहारी
व्याघ्रचर्मपरिधानकलेवरमुण्डमालसन्दशधारी !
वेदशास्त्रदर्शनदिग्दर्शननिपुणमोहभ्रमसंहारी
रक्ष रक्ष गोरक्ष सर्वनिधिदक्ष भक्ष सकलं दुरितम्॥०२॥

(जय) जय जय जय गोरक्षनाथ ! आदेश नमो ! देवाधिदेव !
(जय) आदिनाथ ! पशुपते ! स्वयम्भो ! शम्भो हर हर महादेव !

बालरूपद्वादशसंवत्सरवयसि लिप्तगोमयपिण्डे
तव कविनारायण अवतारी मत्स्येन्द्रनाथदीक्षा मुण्डे !
सिद्धरसेश्वर पतितोऽहं तव शरणे चरणेऽमृतकुण्डे
रक्ष रक्ष गोरक्ष सर्वनिधिदक्ष भक्ष सकलं दुरितम् ॥०३ ॥
(जय) जय जय जय गोरक्षनाथ ! आदेश नमो ! देवाधिदेव !
(जय) आदिनाथ ! पशुपते ! स्वयम्भो ! शम्भो हर हर महादेव !

अङ्गभस्मनिःसङ्गरङ्गशुभशुभ्रदेहपरिमलवेषं
शम्भुनेत्रमालात्रिनेत्रधर्ता हर्ताशुभकृतदोषम् ।
अनलसूर्यप्रतिहतकान्तिः शान्तिर्मनसीत्यन्तकरोषं
रक्ष रक्ष गोरक्ष सर्वनिधिदक्ष भक्ष सकलं दुरितम् ॥०४ ॥
(जय) जय जय जय गोरक्षनाथ ! आदेश नमो ! देवाधिदेव !
(जय) आदिनाथ ! पशुपते ! स्वयम्भो ! शम्भो हर हर महादेव !

तन्त्रशास्त्रशाबरमहास्त्रसर्वार्थसिद्धिदायकरचितं
वज्रगात्र योगेश वज्रबटुकेश शेषतमसो रहितम् ।
वज्रपाणिमस्तकचूडामणिवन्दितपादसदाविनतं
रक्ष रक्ष गोरक्ष सर्वनिधिदक्ष भक्ष सकलं दुरितम् ॥०५ ॥
(जय) जय जय जय गोरक्षनाथ ! आदेश नमो ! देवाधिदेव !
(जय) आदिनाथ ! पशुपते ! स्वयम्भो ! शम्भो हर हर महादेव !

--*